विज्ञान की प्रकृति

क्यों विज्ञान को एक रूढ़ि की तरह न पढ़ाएँ

उमा सुधीर

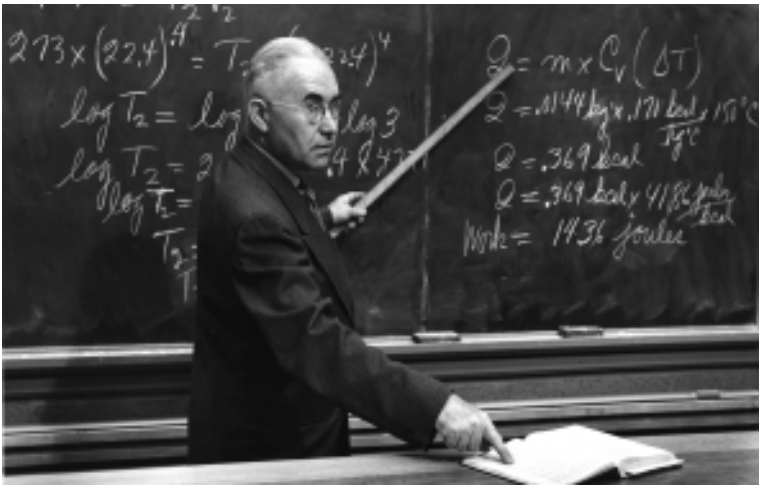

यह आलेख इस बात की एक मोटी-मोटी समझ बनाने का प्रयास है कि विज्ञान की प्रकृति क्या है और विज्ञान शिक्षा के लिए इसके निहितार्थ क्या हैं। इस भाग में वैज्ञानिक व्याख्या, विज्ञान किसे कह सकते हैं, वो क्या है जो वैज्ञानिक करते हैं, विज्ञान के कुछ गुणों, वैज्ञानिक फिलॉसफी और छद्म-विज्ञान की कुछ बातें।

विज्ञान अपने आसपास की दुनिया का अर्थ समझने के कई प्रयासों में से एक है। हम मनुष्य जिज्ञासु होते हैं, अपने परिवेश की खोजबीन करते हैं और पैटर्न देखते हैं और सोचते हैं कि क्यों यही पैटर्न नज़र आते हैं, अन्य नहीं। जन्म से ही हम कुछ विशेष पैटर्न्स को पकड़ने के लिए

प्रोग्राम्ड होते हैं; आगे चलकर हम अन्य पैटर्न ग्रहण करना भी सीख लेते हैं। और हममें इन पैटर्न्स के साथ अर्थ जोड़ने की प्रवृत्ति होती है।

वैज्ञानिक व्याख्या

उदाहरण के लिए शिशुओं में चेहरों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति होती है। ऐसा लगता है कि यह हमारे अन्दर निहित है। यह आवेग इतना शक्तिशाली होता है कि हमें चेहरा देखने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता - तीन बिन्दु, या कभी-कभी सिर्फ दो बिन्दु और एक रेखा, सीधी या गोलाई लिए हुए, इतना ही पर्याप्त होता है।

यहाँ तक तो ठीक है, हम पैटर्न खोजते हैं। इसके बाद जो होता है वह हमें विभिन्न क्षेत्रों में ले जाता है। क्या हम बिजली चमकने और मेघ गर्जना का श्रेय इन्द्र को देते हैं या थोर (उत्तर यूरोप के स्कैण्डिनेविया क्षेत्र के पुराणों का एक भगवान जो तूफानी मौसम, आकाश व गरज का देव माना जाता है) को; या क्या हम इसकी व्याख्या विद्युत डिस्चार्ज के रूप में करते हैं? इन व्याख्याओं में अन्तर क्या हैं?

पहली व्याख्या हमें धर्म की ओर ले जाती है। धर्म एक निहायत कामयाब मानव उद्यम है जो इस बात की व्याख्या करता है या करने का दावा करता है कि घटनाएँ क्यों घटती हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि धर्म हममें से कई के लिए सुकून का स्रोत है, यह हममें से कई को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने और उनसे उबरने की ताकत प्रदान करता है। धर्म दुनिया भर में कई अद्‌भुत कलाओं और वास्तुकला का प्रेरणा स्रोत भी रहा है।

दूसरी वाली व्याख्या 'वैज्ञानिक' व्याख्या है। अलबत्ता, जहाँ तक वैज्ञानिक व्याख्या का सवाल है, तड़ित को विद्युत डिस्चार्ज कहना पूरे मुद्‌दे का अंशमात्र है। मगर यहाँ हम विद्युत और मेघ गर्जना और तड़ित को समझने की कोशिश करने की बजाय, इस बात पर ध्यान देंगे कि इस व्याख्या को क्यों 'विज्ञान' कहते हैं। इससे शायद हमें यह भी समझने में मदद मिलेगी कि वर्तमान में विज्ञान ने अपना आभा-मण्डल कैसे हासिल किया है और क्यों तमाम किस्म की बकवास को वैज्ञानिक कहकर उचित ठहराने के प्रयास हो रहे हैं। क्यों यह कहा जाता है कि कोई बात उचित है क्योंकि वैज्ञानिकों ने ऐसा कहा है? विज्ञापनों में सफेद कोट पहने व्यक्ति आपको बताएँगे कि फलाँ चीज़ बच्चे की वृद्धि को तेज़ करती है या अमुक चीज़ कपड़ों को ज़्यादा सफेद धोती है। इन विज्ञापनों में मुझे एक अच्छी बात यह लगती है कि जहाँ पहले सफेद कोट में सिर्फ पुरुष हुआ करते थे, आजकल महिलाएँ भी होती हैं। अन्यथा ये विज्ञापन विज्ञान से कोसों दूर हैं, हालाँकि इनमें मानव मनोविज्ञान की गहरी समझ झलकती है।

विज्ञान - फिलॉसफी एवं प्रकृति

कई दार्शनिक यह समझने की कोशिश करते आ रहे हैं कि जिसे हम विज्ञान कहते हैं वह अन्य क्षेत्रों से अलग किस तरह है (यह शब्द 'विज्ञान' मात्र दो सदी पुराना है; न्यूटन स्वयं को वैज्ञानिक नहीं मानते थे)। इसके लिए ये दार्शनिक लोग वैज्ञानिक कामकाज को परिभाषित करने का प्रयास कर रहे हैं - वह क्या है जो वैज्ञानिक करते हैं? वैज्ञानिक सिद्धान्त या सूत्र वगैरह तक पहुँचने के लिए किस तरह के तर्क का सहारा लिया जाता है?

इसके ज़रिए हम पूरे दर्शन-शास्त्रियों से परिचित हो सकते हैं - A Aristotle का, B Bacon का वगैरह। फिलहाल मैं उस सबको छोड़कर उस अभिमत को व्यक्त करूँगी जो आजकल के अधिकांश वैज्ञानिकों को मान्य है। हो सकता है कि वे इस मत को स्वीकार करते हों क्योंकि यह उनकी तारीफ करता है। मगर इसमें कुछ सच्चाई भी है।

यह विज्ञान का वह दर्शन है जिसे कार्ल पॉपर ने प्रतिपादित किया है। संक्षेप में, वे न सिर्फ उन सवालों का जवाब देने की कोशिश कर रहे थे जो उनसे पहले के विचारकों ने विज्ञान की विधि को लेकर उठाए थे बल्कि यह सीमांकन करने की कोशिश भी कर रहे थे कि वैज्ञानिक क्या करते हैं और यह अर्थ-निर्माण के अन्य प्रयासों से किस मायने में अलग है। पॉपर ने कहा कि विज्ञान की प्रकृति परिकल्पना आधारित निगमन (हायपोथेटिको-डिडक्टिव) की है; और जो चीज़ वैज्ञानिक व्याख्या को अन्य व्याख्याओं से अलग करती है, वह यह है कि वैज्ञानिक व्याख्याओं को गलत साबित करने की गुंजाइश होती है - वे खण्डन-योग्य होती हैं।

शब्दों के इस जाल का अनुवाद रोज़मर्रा की भाषा में करते हैं।

सबसे पहले परिकल्पना आधारित निगमन - मानती हूँ कि यह एक भौण्डा और बेढंगा जुमला है। इस जुम्ले का उपयोग करके पॉपर डेविड ह्यूम के भूत को दफनाने की कोशिश कर रहे थे। यह काफी समय से माना गया है कि गणित में निगमन तर्क का उपयोग किया जाता है जबकि विज्ञान आगमन तर्क (इंडक्टिव लॉजिक) का उपयोग करता है।

चलते-चलते इन दो शब्दों को भी समझ लेते हैं।

निगमन तर्क का एक आम उदाहरण यह है:

प्रमुख मान्यताः सारे पुरुष मरणशील हैं।

गौण मान्यताः सुकरात एक पुरुष हैं।

निगमन-निष्कर्षः सुकरात मरणशील हैं (इस बात की पुष्टि उन्होंने ज़हर पीने के बाद जान गँवाकर की थी)।

ध्यान दीजिए कि यहाँ कोई नया ज्ञान पैदा नहीं हो रहा है; सब कुछ प्रमुख व गौण मान्यताओं में निहित है। हमने सिर्फ जानकारी को

पुनःव्यवस्थित करके एक नया कथन बना लिया है जो एक निगमन-निष्कर्ष है। सारा गणित इसी तरह के तर्क पर बना है - यूक्लिड की ज्यामिति के आधार-वक्तव्यों (postulates) के आधार पर हम शेष समूची ज्यामिति का निर्माण कर सकते हैं। प्रसंगवश, आइसैक एसिमोव (बायोकेमिस्ट्री के प्रोफेसर और विज्ञान गल्प के जानेमाने लेखक) ने यूक्लिड के आधार-वक्तव्यों पर एक दिलचस्प लेख लिखा है (यह *संदर्भ* के अंक-58 में प्रकाशित हुआ था)।

आगमन तर्क का एक उदाहरण देखिएः

अवलोकन 1 कौआ 1 काला है
अवलोकन 2 कौआ 2 काला है
अवलोकन 3 कौआ 3 काला है
...
...
अवलोकन n कौआ n काला है
इसलिए सारे कौए काले हैं।

आगमन आधारित विज्ञान में दिक्कतें

अर्थात्, काफी समय तक ऐसा माना गया था कि सामान्यीकरण या आगमन वह विधि है जिसके ज़रिए वैज्ञानिक ज्ञान हासिल किया जाता है। मगर डेविड ह्यूम ने आंगन में 'कंकाल' ढूँढ़ निकाला। एक तो उन्होंने यह बताया कि यदि वैज्ञानिक नियम आगमन पर आधारित हैं तो यह बहुत ही कमज़ोर ज़मीन पर खड़ा है। क्योंकि इस मामले में आप उस अर्थ में कभी भी कुछ 'सिद्ध' नहीं कर सकते जिस अर्थ में गणितीय प्रमाण निरपेक्ष होता है। उदाहरण के लिए, यह सिद्ध करने के लिए कि सारे कौए काले होते हैं आपको दुनिया के सारे कौओं, अतीत, वर्तमान और भविष्य के सारे कौओं का अवलोकन करना पड़ेगा। और (दूसरी बात कि) तब भी एक सफेद या नारंगी या गुलाबी कौआ नज़र आने पर इस सामान्यीकरण की वाट लग जाएगी। ह्यूम ने कोई विकल्प तो नहीं सुझाया मगर कहा कि आगमन में हमारी आस्था मात्र इस गलतफहमी पर टिकी है कि सामान्यीकरण के हमारे पूर्व-अनुभवों ने बताया है कि सामान्यीकरण वाजिब है (अब तक)। कहने का मतलब है कि हम हर नया सामान्यीकरण इस 'मुगालते' के आधार पर बनाते हैं कि हमारे सारे पूर्ववर्ती सामान्यीकरण आज तक सही रहे हैं।

परिकल्पना आधारित निगमन

पॉपर ने इस समस्या का समाधान एक अनोखे ढंग से करने का सुझाव दिया। सबसे पहले तो उन्होंने कहा कि विज्ञान न तो आगमन की विधि का उपयोग करता है, न निगमन की। वह तो परिकल्पना-आधारित निगमन का उपयोग करता है। इसका मतलब है कि हम पहले कोई पैटर्न देखते हैं और आगमन की प्रक्रिया से सामान्यीकरण तक पहुँचते हैं। अर्थात् पहला कदम अनुभव-आधारित होता है; हमारे पास सूचनाएँ बाहरी दुनिया से आती हैं। प्रसंगवश, यह बता दें कि

इसमें यह मानकर चल रहे हैं कि हमारे बाहर एक दुनिया का अस्तित्व है। यानी विज्ञान ऐसे व्यक्ति से कुछ नहीं कह सकता जो कहे कि सब माया है, जगत मिथ्या है।

खैर, इसके बाद वास्तविक विज्ञान तब शुरू होता है जब हम यह व्याख्या करने के लिए परिकल्पना विकसित करते हैं कि हम वही पैटर्न क्यों देख रहे हैं, कोई और पैटर्न क्यों नहीं, या पैटर्न है ही क्यों। उदाहरण के लिए, विद्युत धारा यह समझाने के लिए एक परिकल्पना है कि परिपथ पूरा होने पर बल्ब क्यों जल उठता है। इसके बाद इस परिकल्पना के आधार पर नई भविष्यवाणियाँ उभरनी चाहिए। अर्थात् यह सम्भव होना चाहिए कि हम इस परिकल्पना के आधार पर अब तक अज्ञात परिणाम निगमित कर पाएँ। यह है परिकल्पना के बाद निगमन यानी विज्ञान की परिकल्पना-आधारित निगमन विधि।

पॉपर के मुताबिक यह विज्ञान का पहचान चिन्ह है। यही उसे अलग बनाता है - प्रत्येक परिकल्पना द्वारा की गई भविष्यवाणी को प्रकृति की कसौटी पर खरा उतरना होगा। यदि भविष्यवाणी गलत सिद्ध होती है तो हमें सामान्यीकरण की व्याख्या के लिए कोई नई परिकल्पना सोचनी पड़ेगी। यानी खण्डन-योग्यता। पॉपर ने कहा कि सिर्फ विज्ञान ही ऐसी व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है जो खण्डन-योग्य हैं। और यही बात विज्ञान को तलाश के शेष सारे उद्यमों से अलग करती है। उन्होंने मार्क्सवाद पर मशहूर हमला किया था, जो वैज्ञानिक होने का दावा करता था। उन्होंने कहा था कि जब भी कम्युनिस्ट सिद्धान्त द्वारा की गई भविष्यवाणियाँ गलत निकलती हैं तो कम्युनिस्ट लोग परिस्थितियों की दुहाई देकर एक बार फिर अपने सिद्धान्त को बढ़ावा देने लगते हैं। इस आधार पर पॉपर का कहना था कि मार्क्सवाद छद्म-विज्ञान है।

धर्म भी हमें ऐसी कोई चीज़ नहीं देता जिसका खण्डन सम्भव हो। हम जिस किसी धर्म को मानने का फैसला करें (या जिस धर्म में हमारा जन्म हुआ हो), हमें उसके नियमों को स्वीकार करना पड़ता है, किसी सवाल की अनुमति नहीं होती, कोई प्रमाण नहीं दिया जाता। या जो लोग सवाल पूछते हैं, वे अपना अलग पन्थ बना लेते हैं और वह भी उतना ही अनुल्लंघनीय होता है।

विज्ञान का पहचान चिन्ह

विज्ञान पर लौटें। उसका पहचान चिन्ह यह है कि उसके सिद्धान्त खण्डन-योग्य होते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण परिणाम होता है - कि किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के लिए कभी कोई परम प्रमाण नहीं होता। जब कोई परिकल्पना या सिद्धान्त कई परीक्षणों में सफल हो जाए तब हम किसी अनजाँचे सिद्धान्त की अपेक्षा उस सिद्धान्त में ज़्यादा विश्वास करते हैं, मगर इस विश्वास

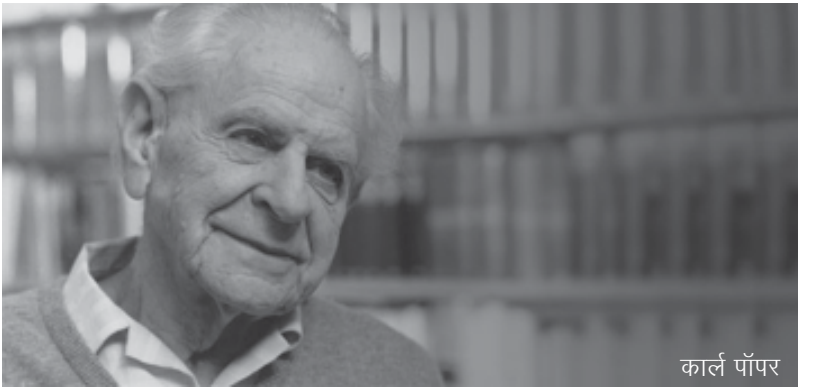

कार्ल पॉपर

के कारण उसे किसी नए अथवा अनपेक्षित अवलोकन के आधार पर गलत ठहराए जाने से सुरक्षा हासिल नहीं होती। पॉपर इसे सत्य के नज़दीक पहुँचना कहते हैं, वास्तव में आप सत्य तक कभी नहीं पहुँचते। किसी सिद्धान्त के पक्ष में नए-नए प्रमाण मिलने से सिर्फ उसकी सत्य-सादृश्यता (वेरिसिमिलिट्यूड) बढ़ती है।

इसका मतलब है कि कोई भी सच्ची खोजबीन खुलापन लिए होती है। जब हम किसी सवाल की पड़ताल शुरू करते हैं तो हमारे पास यह जानने का कोई तरीका नहीं होता कि क्या पता लगने वाला है। न ही हमें कोई अन्तिम उत्तर मिलता है; हमें सिर्फ बेहतर-से-बेहतर व्याख्याएँ मिलती हैं। यह बात काफी मशहूर है कि निष्कर्ष वह चीज़ होती है जहाँ हम सोच-सोचकर थक चुके होते हैं।

तो विज्ञान की बात करते हुए हमें निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी होंगी:

- यह अपने आसपास की दुनिया की व्याख्या करने का एक प्रयास है।
- यह एक परीक्षण सुझाता है जिसकी मदद से हम यह निर्णय कर सकते हैं कि कोई व्याख्या उपयोगी है।
- हमें कभी भी 'अन्तिम' सत्य तक नहीं पहुँचाता।
- अर्थात् प्रत्येक सिद्धान्त की एक अवसान तिथि (एक्सपायरी तारीख) होती है (जो पहले से पता नहीं होती)।

किसी सिद्धान्त की जाँच को लेकर चन्द और शब्द लाज़मी हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह 'जाँच' सबकी पहुँच में होती है। कोई भी व्यक्ति विज्ञान कर सकता है, प्राप्त आँकड़ों पर नज़र डाल सकता है और यह अनुमान लगा सकता है कि पूरा मामला धुप्पलपट्टी है या भरोसे के काबिल

है। सिद्धान्त हमेशा किसी ऐसे दिमाग में ही आता है जो इसके लिए तैयार है मगर एक मर्तबा सिद्धान्त प्रस्तावित हो गया तो उसकी जाँच कोई भी कर सकता है। दरअसल, विज्ञान का इतिहास दर्शाता है कि ऐसा नहीं है कि एक अकेला व्यक्ति सिद्धान्त का जनक होता है। यदि न्यूटन का जन्म न होता तो क्या हमें गुरुत्वाकर्षण के बारे में कुछ भी पता न होता? ऐसा नहीं है क्योंकि कई लोग उसी दिशा में काम कर रहे थे। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि डारविन और वालेस, दोनों जैव-विकास के सिद्धान्त तक लगभग साथ-साथ पहुँचे थे।

यह विवरण विज्ञान का एक निहायत सघन स्वरूप है। मुझे यकीन है कि इसने कई सवालों को जन्म दिया होगा। मगर एक सांगोपांग विवरण (फुल एक्सपोज़िशन) के लिए दस्तों कागज़ की ज़रूरत होगी। तो इस संक्षिप्त विवरण के आधार पर हम यह देखेंगे कि विज्ञान शिक्षा के लिए इसके निहितार्थ क्या हैं। मैं यह मानकर चल रही हूँ कि हम यह स्वीकार करते हैं कि स्कूलों में विज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए और हम विज्ञान शिक्षण के कहे-अनकहे लक्ष्यों को भी स्वीकार करते हैं। तो हम इस सवाल पर आ जाते हैं कि विज्ञान में क्या पढ़ाया जाना चाहिए, कैसे पढ़ाया जाना चाहिए और फिलहाल हम अधिकांश स्कूलों में जो कुछ करते हैं उसमें गलत क्या है।

अपने स्कूली तंत्र में क्या हम विद्यार्थियों को विज्ञान की खुली प्रकृति की भनक भी लगने देते हैं? क्या हम उन्हें विभिन्न दावों को देखकर उनके मूल्य की जाँच करने के लिए तैयार करते हैं? क्या हम उन्हें दावों पर सवाल उठाकर यह पूछना सिखाते हैं - आपको यह कैसे पता? आपने इस दावे की जाँच कैसे की? आपके पास अपने दावे के समर्थन में क्या तथ्य हैं?

(...जारी)

उमा सुधीरः *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।